

## पं० दीनदयाल उपाध्याय के विचारों का राष्ट्रीय, आर्थिक एवं सामाजिक विकास में योगदान गुलशन बानो

छात्रा, गाँधी फ़ैज-ए-आम कॉलेज, शाहजहांपुर

भारत के प्रख्यात विचारक— पण्डित दीन दयाल उपाध्याय का जन्म मथुरा जिले के एक छोटे से गांव नंगला चन्द्रभान में 25 सितम्बर 1916 ई० में हुआ। उनका बचपन संघर्ष में बीता। पण्डित जी ने हाईस्कूल राजस्थान बोर्ड स 1935 ई० और इण्टरमीडिएट पिलानी से 1937 ई० में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। दोनो परीक्षाओं में उन्हें स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। इसके बाद स्नातक बी०ए० की परीक्षा पास की। पण्डित दीनदयाल एक कुशल संगठक होने के साथ-साथ अच्छे लेखक तथा पत्रकार भी थे। उन्होंने राष्ट्रीय धर्म प्रकाशन की स्थापना की और अपने विचारों को प्रस्तुत करने के लिए “राष्ट्र धर्म” नामक मासिक पत्रिका की शुरुआत की।

इसके बाद उन्होंने एक “पांचजन्य” नामक पत्रिका की भी शुरुआत की। 11 फरवरी 1968 ई० को इस महान योद्धा ने दुनिया को अलविदा कह दिया। पं० दीनदयाल उपाध्याय ने आजीवन भारत वर्ष के राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक विकास के लिए सतत प्रयास किये, प्रस्तुत शोध पत्र में तथा पण्डित जी के द्वारा उपरोक्त विषयों पर किये गए प्रयासों को विस्तारित रूप से दर्शाया गया है।

समाज, संस्कृति, धर्म और राष्ट्र ये चारो ही ऐसे शब्द हैं जिनके साथ जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी उनके बारे में देश में बहुत भ्रम फैला हुआ है। इसका बहुत बड़ा कारण यह भी है कि जब हम इन शब्दों का कोई पर्याय विदेशी भाषाओं में ढूँढने का प्रयास करते हैं तो वहाँ उन तथा कथित पर्यायवाची शब्दों के पीछे जो भी भाव उन भाषाओं में खड़े किए गये हैं, उन्हें अपने देश में भी आरोपित करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार ये शब्द आज हमारे लिए कष्टप्रद और मतिभ्रम उत्पन्न करने वाले बन गए हैं।

सर्वप्रथम राष्ट्र शब्द का ही आजकल हमारे यहाँ प्रादेशिक राष्ट्रवाद की कल्पना प्रचालित हो गई है। कोई भी राष्ट्र तभी तक जीवित माना जा सकता है जब तक उसकी आत्मा उसके भीतर विद्यमान है और साधारणतया संस्कृति किसी भी राष्ट्र की आत्मा होती है। केवल बाह्य उपकरणों से राष्ट्र जीवित नहीं रहता। राष्ट्र के रहने वाले मनुष्य आते जाते रहते हैं, उनकी संख्या घटती बढ़ती रहती है। राष्ट्र की भूमि भी उन मनुष्यों के सामर्थ्य के अनुसार कभी उनके पास रहती है, कभी दूसरों के अधिकार में चली जात है, इन दोनो के घटने बढ़ने से राष्ट्र के अस्तित्व पर प्रभाव नहीं पडता, किन्तु, यदि एक बार ये दोनों बने रहे पर संस्कृति समाप्त हो गई तो राष्ट्र जीवन का अंत समझना चाहिए।

जिस प्रकार आत्मा निकल जाने के पश्चात अत्यंत हट्टा कट्टा शरीर भी किसी अर्थ का नहीं रहता, उसी प्रकार संस्कृति समाप्त होने के बाद अन्य तत्व शेष नहीं रहे तो भी राष्ट्र नष्ट हो जाता है।

आजकल लोग कहते हैं कि यूनान का पुराना राष्ट्र समाप्त हो गया। यूनान की भूमि जहाँ की तहाँ मौजूद, आज भी नक्शे में उसे देख सकते हैं, वहाँ लोग भी रहते हैं। वे कोई ऐसे नहीं कि किसी भूकंप में पुराने सब लोगों के यकायक समाप्त हो जाने के उपरान्त फिर नए सिरे से किसी दूसरी जगह से लेकर बनाए गए हों। वास्तविकता यह है कि उन्हीं पुराने लोगों की संतान आज भी वहाँ रहती हैं। किन्तु पुरानी संस्कृति समाप्त हो गयी, पुराने लोगों की जीवन प्रणाली नष्ट हो गई। इसीलिए हम कहते हैं कि यूनान का पुराना राष्ट्र मर गया, अर्थात् संस्कृति इतनी महत्वपूर्ण है कि उसके नष्ट होने से संपूर्ण राष्ट्र जीवन प्रवाह खण्डित हो जाता है। अतः इसके मूल रूप का विचार करना अत्यंत आवश्यक है। दीनदयाल उपाध्याय के शब्दों में कि 'हमारे पास एक स्पष्ट आर्थिक कार्यक्रम है। किन्तु उसका स्थान हमारे संपूर्ण कार्यक्रम में उतना ही है, जितना भारतीय संस्कृति में अर्थ का है। पश्चात्य संस्कृति भौतिकवादी होने के कारण अर्थ प्रधान है। हम भौतिकवाद तथा अध्यात्मवाद दोनों का सम्बन्ध करके चलना चाहते हैं अतः यह निश्चित कि हम उन अर्थ शास्त्रियों एवं दलों से जो अर्थ के समाने जीवन के प्रत्येक मूल की उपेक्षा करके चलना चाहते हैं, इस मामले में सदैव पीछे रहेंगे'।

व्यक्ति की ओर दुर्लक्ष्य और बाह्य व्यवस्था पर जोर दिया गया। निर्जीव व्यवस्था के सामने चेतन मनुष्य नगण्य माना गया। व्यक्ति के अन्दर विद्यमान सद्गुणों के विकास करने के स्थान पर उनका ह्रास करने वाले उपायों का ही अवलंबन किया गया। राष्ट्र निर्माण की योजनाएं बनाने वालों ने इस तथ्य को सर्वथा भुला दिया कि प्रयास करने पर मनुष्य मानव से देवता बन सकता है। उन्होंने मानव का गार्हित स्वरूप ही सामने लाकर रखा। वे पूंजीवाद के आधार में एक ऐसे मनुष्य की कल्पना करके चलते हैं, जो विशुद्ध आर्थिक मनुष्य है।

हम व्यक्ति और समाज को अलग अलग हिस्सों में परस्पर विरोध की भूमिका में नहीं देख सकते। विरोध के आधार पर जिस समानता की बात पश्चिम ने कही है हम उसे स्वीकार नहीं कर सकते। वास्तव में सृष्टि में कोई भी दो चीजें समान नहीं हैं। विविधता ही सृष्टि का सौन्दर्य है। इसलिए सबकी एक जैसी आवश्यकताएँ भी नहीं हो सकती। आवश्यकताओं की भिन्नता भी स्तर पर निर्भर करेगी इसलिए अनेक स्तर होना भी बिल्कुल स्वाभाविक है। समानता लाने की बात परस्पर प्रतिन्दिता और ईर्ष्या का निर्माण कर सकती है। असंतोष और संघर्ष को बड़ा सकती है किन्तु सर्वांगपूर्ण विकास का अवसर नहीं दे सकती। इसलिए हमने समानता नहीं आत्मीयता के आधार सोचना प्रारम्भ किया। घर में छोटा बच्चा या अधिक वृद्ध दोनों ही कमाते नहीं हैं इसलिए समान नहीं हो सकते किन्तु आत्मीयतापूर्वक चलने वाले परिवार में कर्तव्य बुद्धि से सबके लिए अपनी अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर पाना सम्भव हो जाता है। इसलिए हम किसी अंग पर ही सब ध्यान केन्द्रित देना ठीक नहीं समझते। हम सम्पूर्ण का विचार पर आत्मीयतापूर्वक व्यवहार करने में विष्वास रखते हैं। इसलिए हमारी दृष्टि में व्यक्ति और समाज परस्पर पूरक, सहायक और अभिन्न हैं, दोनों अभिरोध सत्ताएँ हैं।

**निष्कर्षः—**

पं० दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार भारत की समस्त नीतियाँ भारतीयतामुखी होनी चाहिए। न तो हमारे लिए पाश्चात्य पूंजीवाद अनुकूल और न ही समाजवाद या साम्यवाद भारतीय जीवन दर्शन इन समस्त वादों से परे विशुद्ध मानवतावादी है।

पं० दीनदयाल उपाध्याय को उपरोक्त अनमोल विचारों का अनुसरण करके हम आज के आधुनिक युग में भी भारत का चहुँमुखी विकास कर सकते हैं।

**सन्दर्भ ग्रन्थ:-**

1. पांचजन्य, जुलाई 6, 1959
2. दीनदयाल उपाध्याय सम्पूर्ण वाड.मय(खंड सात)
3. पण्डित दीनदयाल उपाध्याय एकात्म मानववाद दर्शन